दवाइयों की जांच का गोरखधंधा

इसे कहते हैं 'ठंडे बस्ते में डालना'। यदि किसी अनुसंधान के मनमाफिक परिणाम न मिलें तो उसके साथ यही किया जाता है। इस प्रथा का परिणाम यह है कि शायद डिप्रेशन की दवाइयां उतनी कारगर नहीं है जितना बताया जाता है। सन 1987 से 2004 के बीच में डिप्रेशन को कम करने के लिए 12 दवाइयां बाज़ार में उतारी गईं। इनके संदर्भ में 70 क्लिनिकल ट्रायल्स यू.एस. फूड एंड ड्रग एडमिनिस्ट्रेशन में रजिस्टर भी किए गए थे। मगर पोर्टलैंड स्थित ओरेगन हेल्थ एण्ड साइंस यूनिवर्सिटी के एरिक टर्नर और उनके साथियों ने जब चिकित्सा पत्रिकाओं को छाना तब उन्होंने पाया कि इन 70 क्लिनिकल ट्रायल्स में से 23 के नतीजे प्रकाशित ही नहीं किए गए हैं।

अप्रकाशित ट्रायल्स में से एक को छोड़कर शेष सबमें निष्कर्ष निकला था कि सम्बंधित दवाई या तो असरहीन है या उसका असर संदिग्ध है। वैसे सभी 70 अध्ययनों को एक साथ रखकर देखें तो यही निष्कर्ष उभरता है कि डिप्रेशन की दवाइयां यकीनन कारगर हैं। मगर कुछ ट्रायल्स को अप्रकाशित छोड़ देने से दवाई के असर वास्तविकता से अधिक नज़र आते हैं। टर्नर का मत है कि विपरीत निष्कर्ष वाले ट्रायल्स के परिणाम भी प्रकाशित किए जाने चाहिए।

उनका कहना है कि वैसे यह पता नहीं है कि क्या ये अध्ययन इसलिए नहीं छपे कि इन्हें प्रकाशन के लिए भेजा ही नहीं गया था या इसलिए कि शोध पत्रिकाओं ने इन्हें अस्वीकार कर दिया था। ***(स्रोत फीचर्स)***